भन्ते डा.करूणाशील राहुल

अन्य रचनाएं

1. जंगल की आग
2. तुम्हें जाना कहां था कहां पहुंच गई
3. अपने आदर्शों को आचरण में उतारें
4. शील जीवन का आधार
5. महिलाओं की आदर्श रमाबाई

धम्मभूमि प्रकाशन
66/314-Aभीमनगर के सामने जगनेर रोड़ नरीपुरा,
आगरा (उ.प्र.) - पिन - 282001

वो ग्यारह दिन...

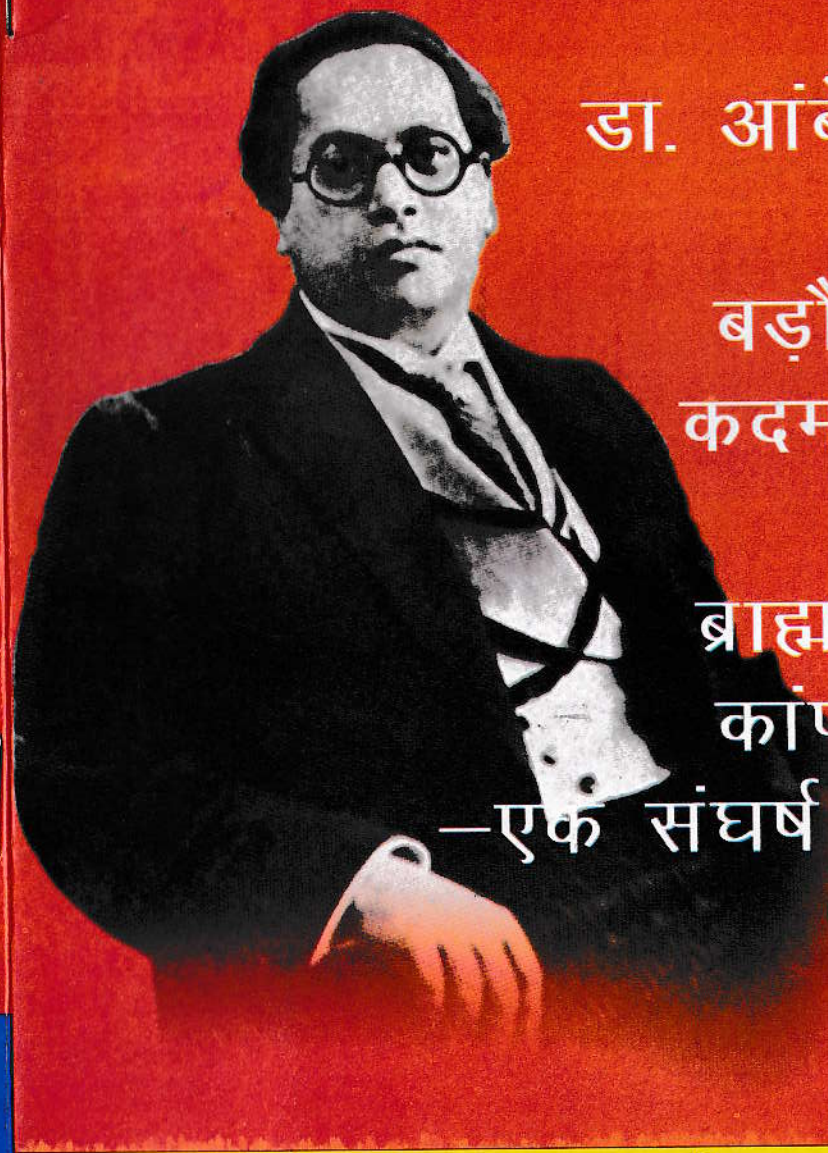

जब
डा. आंबेडकर
ने
बड़ौदा में
कदम रखा
तो
ब्राह्मणवाद
कांप उठा
—एक संघर्ष गाथा

भन्ते डा. करूणाशील राहुल

बौद्धमय भारत श्रृंखला-3

वो ग्यारह दिन...

लेखक
भिक्खु डॉ. करुणाशील राहुल

प्रथम संस्करण, 2012 (बुद्धाब्द 2557) 1000
द्वितीय संस्करण,2013 (बुद्धाब्द 2557) 5000
तृतीय संस्करण, 2014 (बुद्धाब्द 2558) 10000
चतुर्थ संस्करण, 2015 (बुद्धाब्द 2558) 10000
पंचम संस्करण, 2016 (बुद्धाब्द 2559) 10000

© प्रकाशाधीन

इस पुस्तक के किसी भी अंश को इलेक्ट्रानिक, मैकेनिकल, फोटोकॉपी, रिकार्डिंग या अन्य सूचना संग्रह साधनों एवं माध्यमों द्वारा मुद्रित अथवा प्रकाशित करने के पूर्व धम्मभूमि प्रकाशन की लिखित अनुमति अनिवार्य है।

सहयोग राशि : 10/-

प्रकाशनः- धम्मभूमि

मुख्य कार्यलयः- धम्मभूमि

मलोखड़ा, तहः हथीन, जिला-पलवल (हरियाणा)-121103

मोबाईल 09813155324

E-mail:dhammabhoomi@gmail.com

www.dhammabhoomi.com

समर्पण

माता रमा बाई को
जिनके त्याग और
बलिदान से बाबा साहेब
डॉ. आंबेडकर अपना
संकल्प पूरा कर सके।

भूमिका

महापुरुषों के जीवन की छोटी सी घटना इतिहास बन जाती है। भारत रत्न बाबा साहब डॉ. भीमराव रामजी आंबेडकर का जीवन, संघर्षों से भरा है। उनके जीवन की एक-एक घटना संघर्षों की महागाथा है। 'वो ग्यारह दिन' बाबा साहब के जीवन के महत्वपूर्ण दिन हैं। जब डॉ. आंबेडकर अपने विद्यार्थी जीवन से निकल कर, महाराज सयाजीराव गायकवाड़ के साथ किये गए अनुबन्ध को पूरा करने के लिए, नौकरी पर जाते हैं तो, जीवन की हकीकत से किस प्रकार रूबरू होते हैं। डॉ. आंबेडकर की उपस्थिति मात्र से, हजारों वर्षों से भगवान, भाग्य, धर्म-ग्रन्थ, शास्त्रों व स्मृतियों की मजबूत बुनियाद पर खड़ा हुआ ब्राह्मणवाद, कांपने लगा। ब्रह्म ज्ञान भी, डॉ. आंबेडकर की विद्वता के सामने नहीं टिक सका। डॉ. आंबेडकर द्वारा मानवीयता और विद्वता के साथ लड़े जाने वाले युद्ध में, ब्राह्मणों ने गौ-मूत्र को, शस्त्र के रूप में प्रयोग किया। निःसन्देह यह संघर्ष एक तरफा था फिर भी ग्यारह दिनों तक डॉ. आंबेडकर ने कितने अपमान सहे? कितने कष्ट उठाये यह समझ पाना बड़ा कठिन है? पीने को पानी नहीं, चाय नहीं, खाने की व्यवस्था नहीं, खेलने की जगह नहीं, कोई मित्र नहीं, कोई सहयोगी नहीं, कोई रहने की जगह नहीं, इतनी विषम परिस्थितियों में बिताये गये, ग्यारह दिनों में न केवल डॉ. आंबेडकर ने अपने जीवन को बदला बल्कि भारत में, ब्राह्मणवाद को, नेस्तनाबूद होने के कगार पर पहुंचा दिया। ग्यारहवें दिन डॉ. आंबेडकर द्वारा लिए गए संकल्प के बाद, करोड़ों लोगों के जीवन को सही अर्थों में, जीवन मिल सका। इस संघर्ष गाथा को पाठक ठीक प्रकार समझ सकें, यही हमारा प्रयास है।

भिक्खु डॉ. करूणाशील राहुल
मो. : 09813155324

वो ग्यारह दिन...

भारत के इतिहास में, सैंकड़ों वर्षों के अज्ञानता के अंधकार में, एक दीप जगमगाया। डॉ. आंबेडकर के, जहाज से कदम धरती पर रखते ही, एक तूफान के आने की आहट होने लगी। मुम्बई से रेल में बैठकर, बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़ के साथ किए गए अनुबंध को, पूरा करने का प्रयास करने के लिए, डॉ. आंबेडकर बड़ौदा के लिए चल पड़े। ज्योंही बचपन में मिले, अपमानजनक व्यवहार के गहरे जख्मों पर ध्यान जाता तो, उनके दर्द की अनुभूति को नहीं भुला पाते। तो कभी विदेश के स्वच्छ व स्वतंत्र वातावरण में रह कर, अपने को धन्य पाते। मन में सोचने लगें कि, **"मैं भी अपने ज्ञान से बड़ौदा के महाराज को दिए गए वचन को निभाऊंगा तथा प्रासनिक ढांचे में आमूल-चूल परिवर्तन करके जातीय वैमनस्य को समाप्त करने का प्रयास करूंगा।"** अनेकों अरमान अपने मन में संजोए डॉ. आंबेडकर, निरन्तर बड़ौदा की ओर बढ़े जा रहे थे। अपने छात्र जीवन से निकलकर, बड़ौदा की सेना में, सचिव की हैसियत से काम करने के गौरव से, मन बड़ा ही प्रफुल्लित हो रहा था। कभी अपने द्वारा अर्जित ज्ञान से, समाज को बदलने का ख्याल आता तो, कभी पत्नी रमा के त्याग और समर्पण को समझ, उसे भी सुख- सुविधा देने का विचार मन में उठता। अपने पुत्र यशवंत का ख्याल करते तो, कभी बचपन में स्कूल के दौरान हुए अमानवीय जुल्म को याद कर सिहर उठते। अभी मन में यह विचार... चल ही रहा था कि, एक लम्बी सीटी देकर, गाड़ी धीरे-धीरे रूक गई। यह बड़ौदा का रेलवे स्टेशन था। मानों सैंकड़ो वर्षों से इसे भी बाबा साहब के आने का इन्तजार था। स्टेशन से उतरकर, डॉ. आंबेडकर तेज कदमों से, अपने नये दायित्व को निभाने के लिए आगे बढ़ते हैं। उधर डॉ. आंबेडकर के आने से पहले ही, उनके कदमों की आहट से, बड़ौदा मे किसी अनजाने भय की आशंका ने कदम रख दिये थे। सैकड़ों वर्षों से मानवता को कलंकित करते हुए, अमानवीय वर्गीकरण के तहत खड़ा हुआ, जातीय अंहकार लड़खड़ाने लगा था। ब्राह्मणों को चिंता, अपने ब्राह्मणी दुर्ग को, बचाने की हो रही थी। वो सोच रहे थे कि- **"विदेश से पढ़ कर आ रहा अछूत, हमें आदेश**

करेगा! हमें उसका आदेश मानना होगा! एक शूद्र और वह भी अतिशूद्र, अछूत, ब्राह्मण को आदेश करेगा! ब्राह्मण उसका अनुपालन करेगा! यह तो हमारा घोर अपमान होगा! शास्त्रीय मर्यादाओं का उल्लंघन होगा। आने वाली हमारी संतानें; हमें कायर और कमजोर मानेंगी। सैकड़ों वर्षों की मजबूत, ब्राह्मण संस्कृति पर, एक व्यक्ति भारी पड़ रहा है। यह तो हमारे लिए, डूबकर मरने की बात होगी। एक अछूत के कार्यालय में कदम रखते ही हमारी पवित्रता खण्डित हो जाएगी। ऐसी कल्पना ही असहनीय है। हमें किसी भी सूरत में उसे यहां आने से रोकना होगा।'' कोई कहता, ''मैं तो नौकरी ही छोड़ दूंगा। नौंकरी से ज्यादा महत्वपूर्ण मेरे लिए, धर्म को बचाना है। मैं अछूत के साथ कार्य करके कलंकित नहीं होना चाहता। मेरा सम्मान केवल मेरे ब्राह्मण बने रहने में ही है।'' कोई कह रहा था, ''मैं अपनी मेज कुर्सी अलग कमरे में रख लूंगा।'' कोई कह रहा था, **''मैं तो गौ-मूत्र साथ लेकर आया हूं, एक अछूत की परछाई से अपवित्र होने के कारण, गौ-मूत्र से अपने आप को बचाने का प्रयास करूंगा।'' ''क्या करें, घोर कलयुग आ गया। बड़ौदा के महाराज ने भी हमारे रास्ते में कांटे बो दिए। मजबूरी है।''** इस प्रकार डॉ. आंबेडकर के कार्यालय के सवर्ण कर्मचारी, आपस में वार्तालाप कर रहे थे। सभी के सभी अपना-2 काम छोड़कर, एक अछूत से अघोषित युद्ध लड़ने जैसी योजना पर, विचार कर रहे थे। गौ-मूत्र का प्रबंध कर लिया गया था। किस को क्या करना था, यह पहले से ही सुनिश्चित हो चुका था, जिस कुर्सी पर डॉ. आंबेडकर को बैठना था, उसे कार्यालय के अन्तिम कोने में, डाला जा चुका था।

सबसे ज्यादा मुश्किल चपरासी के लिए थी कि, वह अपने-आप को एक अछूत अधिकारी से कैसे बचाए? संभवतः ब्राह्मणी इतिहास में घटने वाली, यह पहली घटना थी। उधर डॉ. आंबेडकर अपने मजबूत इरादों के साथ, ज्ञान से सुसज्जित होकर, मानवीय दृष्टिकोण को लेकर, विदेश में मिले स्वच्छ व स्वतंत्र वातावरण की अनुभूति लिए, कार्यालय में कदम रखा। सोच रहे थे कि, ''जिस सम्मान के साथ मुझे विदेशियों ने विदा किया था, उसी सम्मान के साथ यहां स्वागत होगा।'' विदेश से ज्ञान प्राप्त कर स्वदेश लौटना कोई

छोटी और साधारण बात नहीं थी।

लेकिन यह क्या? ज्यों ही डॉ. आंबेडकर ने अपना पहला कदम कार्यालय में रखा तो, देखा कि चपरासी पैरों में बिछाने वाली जाजम (चटाई), को समेट रहा था। दूसरे व्यक्ति ने कोने में रखी मेज की तरफ इशारा करके कहा कि, यह आपके लिये है। सभी लोग आश्चर्य चकित हो रहे थे। कोई कह रहा था कि, ''यह तो बहुत सुन्दर है, संजीला है, बलिष्ट भी है! यह तो अछूत लगता ही नहीं!'' कोई कह रहा था, ''सुन्दर है तो क्या हुआ, है तो अछूत!'' कार्यालय में गहरी खामोशी को तोड़ते हुए कानाफूसी के शब्द, व्यंग बाणों की भांति, डॉ. आंबेडकर के कानों में बारी-बारी से चुभ रहे थे।

डॉ. आंबेडकर, अपने लिये निर्धारित सीट पर जा कर बैठ गए। उधर ब्राह्मणों ने अपनी योजना अनुसार, गौमूत्र का छिड़काव पूरे कार्यालय में किया तथा कुछ बूंदे अपने ऊपर भी डालीं और इस प्रकार अछूत के प्रभाव से स्वयं को बचाने का, एक निरर्थक प्रयास पूरा किया।

कार्यालय का पहला दिन था, करने को कुछ नहीं था। अपनी आगमन रिर्पोट तैयार कर, महाराज को भेजने को तैयार डॉ. आंबेडकर, अपनी कुर्सी पर बैठ कर, सारे कार्यालय का निरीक्षण कर रहे थे तो, दूसरी तरफ कार्यालय में उपस्थित कर्मचारी (ब्राह्मण सवर्ण), अपनी नजरों को बचाते हुए डॉ. आंबेडकर को घूर-घूर कर देख रहे थे। डॉ. आंबेडकर ने चाहा कि अधिकारी उनका परिचय, कार्यालय में कार्यरत सभी कर्मचारियों से करवाएं तथा उन्हें भी उनके कार्य के बारे में बतायें, लेकिन वैसा नहीं हुआ। कार्यालय में बीते चन्द लम्हों ने ही, बता दिया कि यह विदेश नहीं, भारत देश हैं। यहां विद्वान नहीं, ब्राह्मण होना ही सार्थक है। यद्यपि यह कोई पहली घटना नहीं थी फिर भी, दायित्व में मिले इस व्यवहार ने डॉ. आंबेडकर को आगाह किया मगर परिस्थितियां कुछ और ही ब्यान कर रहीं थीं।

डॉ. आंबेडकर के मन में, सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध, एक जबरदस्त तूफान उठ रहा था। सारा वातावरण भय-ग्रस्त हो रहा था। सोचा, कैन्टीन में चलकर क्यों न एक कप चाय पीऊं? कैन्टीन में पहुंचते ही परिस्थितियों से अनभिज्ञ डॉ. आंबेडकर ने देखा कि यहां का नजारा भी कार्यालय से कुछ कम नहीं है। कैन्टीन में उपस्थित सभी लोग अपनी-अपनी

सीट छोड़कर, इधर-उधर होने लगे। चाय पीना छोड़ दिया। "अछूत आ गया-अछूत आ गया, बचो-बचो!" कहते हुए भगदड़ मच गई। कैन्टीन का मालिक भी उठ खड़ा हुआ और बोला, "जाओ-जाओ!, मैं यहां चाय नहीं दे सकता। ये सभी लोग अपवित्र हो जाएंगे।" डॉ. आंबेडकर कुछ और बोलते इसके पहले ही, सब कुछ जान कर वापस आकर बैठ गए। इस तरह पहला दिन बीत गया।

अब डॉ. आंबेडकर को अपने लिए आशियाना (रुकने की जगह) तलाशना था। इसके लिए, एक के बाद एक होटल में गये। जब जाति का नाम बताते तो, होटल वाले कमरा देने से मना कर देते। अन्त में एक पारसी धर्मशाला में पहुंचे। सोचा, "पारसी फिर भी थोड़ा सभ्य होते हैं, शायद यहां छूत-अछूत की समस्या नहीं होगी"। चौकीदार को अपना परिचय दिया तो उसने जगह देने से मना कर दिया और कहा, "यहां केवल पारसी लोग ही रह सकते हैं। हिन्दू-अछूतों के लिए, यहां कोई जगह नहीं है।" फिर डॉ. आंबेडकर ने, चौकीदार को ज्यादा पैसे देने का लोभ दिया। तब चौकीदार ने कहा, "यदि आप अपना नाम पारसी रख लेते हैं तो मुझे आपको यहां रख लेने में कोई आपत्ति नहीं है।" डॉ. आंबेडकर पहचान छुपाना नहीं चाहते थे लेकिन कोई और रास्ता भी नहीं था। चौकीदार की सलाह पर उन्होंने अपना नाम रजिस्टर में पारसी अंकित कर धर्मशाला के कमरे में सामान रखा। देखने में डॉ. आंबेडकर बड़े सजीले थे, इसलिए उन्हें पहचान छुपा लेने में कोई समस्या नहीं हुई। रहने को जगह मिल गई, इस बात की खुशी थी लेकिन, नाम बदलना और पहचान छुपाना स्वयं को अच्छा नहीं लग रहा था। फिर भी जब तक रहने की कोई जगह न बन जाए तब तक, और कोई विकल्प भी नहीं था। जैसे-तैसे डॉ. आंबेडकर ने रात गुजारी। अगली सुबह फिर कार्यालय आए। यह दिन और ज्यादा गंभीर था। ब्राह्मणों द्वारा, एक अछूत के साथ काम करने से होने वाली छूत से बचने के लिए, क्या-क्या उपाय किए जा सकते थे, वह सब किये गए। ज्योंही डॉ. आंबेडकर ने कार्यालय में कदम रखा, देखा सभी कर्मचारियों ने, रास्ता छोड़ रखा था। डॉ. आंबेडकर के, अपनी सीट पर बैठते ही, सारे दफ्तर में गौ-मूत्र का छिड़काव किया गया। गीता के श्लोकों का उच्चारण भी किया गया।

उधर डॉ. आंबेडकर ने, चपरासी को फाईल लाने को कहा। चपरासी ने नाक चढ़ाते हुए, दूर से ही फाईल साहब की मेज पर फैंक दी। "यह भी कोई फाईल देने का तरीका है! तुम्हें अदब नहीं है क्या?" डॉ. आंबेडकर ने चपरासी को डांटा। चपरासी ने कहा, "साहब तुम अछूत हो इसके अलावा मेरे पास, कोई चारा नहीं है।" ज्योंही फाईल मेज पर आकर, ध ाम की आवाज के साथ गिरी, यूं लगा जैसे इस योद्धा को, जो इस ब्राह्मणी दुर्ग में अकेला विजेता की भावना लेकर आया है, उसे धक्का देने का निरर्थक प्रयास किया गया है। थोड़ी देर के बाद डॉ. आंबेडकर ने उस फाईल में जरूरी काम किया और उसी प्रकार से फाईल को दूर फैंक कर, चपरासी को फाईल ले जाने को कहा।

सितम्बर का महीना था, बहुत तेज प्यास लगी थी। चपरासी को फिर आवाज दी, "पानी लेकर आओ।" चपरासी ने अपने आप को छूत से बचाते हुए, पानी का गिलास मेज तक पहुंचाया। पानी पीकर डॉ. आंबेडकर ने कहा, "गिलास वापस ले जाओ।" "साहब यह गिलास आप ही रखें। मैं इसे नहीं छू सकता," चपरासी ने कहा। इस व्यवहार को देखकर, **डॉ. आंबेडकर को स्कूल के समय की पानी पीने की घटना का स्मरण हो रहा था। आज से 19 वर्ष पूर्व भी मैं, अपने हाथ से पानी नहीं पी सकता था। मुझे प्यास लगती और यह दूसरों पर निर्भर करता था कि पानी पिलाऐं या न पिलाऐं। आज भी इन्सानियत दम तोड़ रही है। प्यास से चाहे किसी की जान चली जाए, परन्तु ब्राह्मणवाद जिन्दा रहना चाहिए, यही ब्राह्मण धर्म है।**

एक चपरासी भी उसी ब्राह्मणी आवरण में बंध कर, हिन्दू धर्म की मान्यताओं को बचाने के प्रति, बड़ा सजग था। चाहे एक अधिकारी के सम्मान को, चकनाचूर ही क्यों ना होना पड़े। जितनी बार चपरासी साहब की मेज तक जाता गौ-मूत्र से अपने को शुद्ध करवाता। फाईल पर भी, एक कार्यरत कुशल ब्राह्मण कर्मचारी द्वारा, गौ-मूत्र छिड़कवाकर शुद्ध करता। कार्यालय का सारा कार्य समाप्त हो गया केवल, एक ही कार्य बड़ी तत्परता के साथ किया जाने लगा कि कैसे भी हो, अपनी पवित्रता को बचाना था। एक अछूत के आने से तो, कार्यालय में सांस लेना भी मुश्किल हो रहा था।

अछूत की तरफ से आने वाली गन्ध से कैसे बचा जाए? अभी सभी कर्मचारी चर्चा कर ही रहे थे कि "अरे! हमने तो इसकी मेज भी पीछे डाली थी ताकि, हमसे दूर रहे, लेकिन हवा से कैसे बचें?" आपस में धर्म चर्चा (वास्तव में अधर्म चर्चा) कर बचने का मार्ग खोज रहे थे। डॉ. आंबेडकर तक ये सब बातें, बिना किसी बाधा के पहुंच रही थीं। अब यह एक घोषित युद्ध था। डॉ. आंबेडकर ने ऊंची आवाज में कहा, "एक कपड़े को गौ-मूत्र में भिगोकर, अपने नाक के आगे बांध लो। बस यही एक उपाय है।" "देखो-देखो! हमें ही सलाह दे रहा है।" ब्राह्मण चिल्लाए, "जैसे यह ही हिन्दू धर्म का ज्ञाता है!" **"ठीक ही कहा है शास्त्रों में, जब भी शूद्र ज्ञान लेगा, वह ब्राह्मणों को उपदेश देने लगेगा। इसलिए तो इन्हे ज्ञान देने की मनाही थी, हमारे धर्म शास्त्रों में, लेकिन बड़ौदा के महाराज ने भी, न जाने क्यों... गैर धार्मिक कार्य शुरू कर दिया।" "अरे! हम तो पहले ही कह रहे थे, इस अछूत को विदेश मत जाने दो कैसे भी रोको, लेकिन उस समय हम कुछ नहीं कर सके। महाराज की इच्छा के विरूद्ध जाने की हिम्मत किसी में नहीं थी।" "दीवान तो चाहता था कि, आंबेडकर विदेश न जाए लेकिन वह भी कुछ नहीं कर सका।" "और! यह तो भला हुआ, हमने इसकी पढ़ाई बीच में ही छुड़वा कर वापिस बुला लिया, नहीं तो यह और ज्यादा पढ़ने की बात कर आगे भी पढ़ना चाहता था। अगर और आगे भी पढ़ लेता तो हमें उल्टा भी लटका देता।"** "देखों न! अभी-अभी हमें सलाह दी है कि गौ-मूत्र में कपड़ा भिगोकर, अपने नाक पर बांध लो। अरे! यह काम तो पेशवाओं के जमाने में, हमने अछूतों से करवाया था।" "कितना बढ़िया समय था... ये अछूत अपने गले में हांडी बांध कर चलते थे। कमर पर झाड़ू बांधते थे। आज हमें ये धर्म-कर्म सिखा रहा है। डूब कर मरने की बात है हमारे लिए!" इस तरह सभी आपस में फुसफुसा रहे थे। सभी कर्मचारियों ने कहा "अफसोस-अफसोस...।"

एक बार फिर कार्यालय में सन्नाटा छा गया। किसी को कुछ नहीं सूझ रहा था, कि, क्या किया जाये? "एक तो अछूत है, दूसरा मुखर भी। हम तो एक बात कहते हैं कि यह दो बातें आगे कर देता है।" धीरे-धीरे फिर

कानाफूसी होनी शुरू होने लगी। कार्यालय में बस यही एक काम बचा था। मिलकर, सभी अपने आपको बचाने का उपाय खोज रहे थे। डॉ. आंबेडकर ने कहा, "क्यों अपना समय बर्बाद कर रहे हो? जाओं अपना-अपना काम करो। रही बात शास्त्रार्थ की मैं, सांय के समय क्लब में आऊंगा वहीं कर लेना।" सभी ब्राह्मण चिल्लाए, "अरे! यह क्लब में भी आयेगा। हमारे साथ खेलेगा। दफ्तर को तो अपवित्र कर दिया है अब क्लब को भी करेगा। नहीं, तुम नहीं आ सकते क्लब में, हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे। वहां कोई दफ्तर नहीं है। यहां तो हमारी मजबूरी है लेकिन खेलना हमारी मजबूरी नहीं है।" कार्यालय में कार्यरत ब्राह्मणों ने चपरासी से कहा, "जाओ! साहब को कहो, सांय को क्लब में न आयें। वहां हमारे बीबी बच्चे भी आते हैं। यहां तो जो होना था सो हुआ लेकिन हम किसी भी सूरत में, अपने परिजनों को अपवित्र नहीं होने देंगे।" डॉ. आंबेडकर ने सुना और अपना इरादा बदल दिया।

कार्यालय में प्रत्येक कर्मचारी केवल अपनी पवित्रता को बनाए रखने के लिए सजग था। इधर डॉ. आंबेडकर अपने स्वाभिमान व सम्मान को बचाने के लिए तत्पर थे तो उधर ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व को बनाए रखने के लिए बेचैन हो रहे थे। डॉ. आंबेडकर अपमान से परिपूर्ण व्यंग्य बाणों की परवाह न करते हुए, अपने दायित्व के प्रति गम्भीर थे। मि. भोंसले, जोकि लेखाकार थे उन्हें डॉ. आंबेडकर ने एकाउण्ट चैक करने के लिए बुलाया और कहा, "मि. भौंसले! आपको लेखाकार होने का कितना अनुभव है? क्या आपको बिल की राशि के साथ, बिल का नम्बर नहीं लिखना चाहिए?" भौंसले ने कहा, "साहब रह गए होगें।" डॉ. आंबेडकर ने कहा, "अभी ठीक करके, पुनः फाईल मेरे पास भेजो।" उस फाईल में अनेकों अनियमितताओं को उजागर कर, भौंसले के बुरे इरादों को, डॉ. आंबेडकर ने बेनकाब कर दिया। भौंसले बैचेन हो उठा और सोचने लगा, "अब क्या करें? यह मामला तो महाराज के पास जाएगा तो क्या होगा, मेरी नौकरी का?" भौंसले आकर गिड़गिड़ाता है, "साहब इस काम को पुनः करने के लिए मुझे काफी समय लगेगा, थोड़ी मोहलत दे दो।"

डॉ. आंबेडकर की पैनी निगाहों से सारा कार्यालय सकपका गया। अभी तक तो केवल अछूत की उपस्थित से होने वाली छूत का ही डर था

लेकिन यह क्या? यह तो अपनी विद्धता से उनके काम में गलतियां भी निकाल रहे थे। अकेला भौंसले ही नहीं, यहां तो सभी ऐसे थे। छूतपन तो गौ-मूत्र से ठीक हो सकती है लेकिन इस विद्वता को धोने का कोई उपाय नहीं था। अब तो एक ही रास्ता है किसी न किसी प्रकार इसे यहां से निकाला जाए और कार्यालय के सभी कर्मचारी, डॉ. आंबेडकर से छुटकारा पाने के लिए योजना बनाने लगे।

इधर डॉ. आंबेडकर को रहने के लिए पूरे बड़ौदा शहर में जगह नहीं मिल रही थी। जहां भी जाते लोग मकान देने के लिए राजी हो जाते लेकिन जाति का नाम आते ही सभी मना कर देते। डॉ. आंबेडकर ने अपने एक मित्र से कहा और उसने हां भी कर ली लेकिन पीछे से सन्देश भिजवा दिया कि, "मुझे तो कोई कठिनाई नहीं है। मैं छूत/अछूत को नहीं मानता लेकिन मेरा परिवार तैयार नहीं है।"

एक इसाई मित्र ने डॉ. आंबेडकर को अपने घर पर रखने के लिए हांमी भरी, लेकिन उसने भी पीछे से संदेश भिजवा दिया कि, "मैं तो इसाई हूं, लेकिन मेरी पत्नी सनातनी हिन्दू है। वह इसके लिए तैयार नहीं है। इसलिए आप यहां मत आना।" पूरा बड़ौदा शहर छान मारा किन्तु न कोई मित्र, न कोई और, और न ही होटल इत्यादि में कमरा मिल रहा था। रात बितानी भारी पड़ रही थी। ऐसे में कैसे नौकरी की जाये, बड़ी समस्या बन गई थी? डॉ. आंबेडकर जहां भी मकान के लिए जाते वहां जाति भी साथ जाती और अन्ततः पूरे बड़ौदा में एक भी कमरा रहने को नहीं मिला।

डॉ. आंबेडकर ने सोचा क्यों न मैं महाराज को इस समस्या से अवगत कराऊं। महाराज से समय लेकर डॉ. आंबेडकर मिले। कार्यालय के वैमनस्य पूर्ण व्यवहार के बारे में तथा रहने की जगह न मिलने के बारे में, महाराज को अवगत कराया। महाराज ने भी कहा, "आंबेडकर! मैं भी व्यवस्था बदलना चाहता हूं लेकिन एकदम से मैं भी यह कार्य नहीं कर सकता, जो आपसे होता है वह करो। इस सारी व्यवस्था को, मैं भी बदल पाने में असमर्थ हूं।" महाराज से की गई मुलाकात भी इस समस्या का समाधान नहीं कर सकी।

प्रतिदिन कार्यालय में कोई न कोई नई घटना घटित हो रही थी। डॉ.

आंबेडकर अपने विद्वता पूर्ण व्यवहार से, कार्यालय की सभी कमियों को उजागर कर, उन्हें ठीक करने का आदेश दे रहे थे। बिना किसी के सहयोग के, डॉ. आंबेडकर ने कार्यालय की कार्यप्रणाली को समझ लिया था। एक के बाद एक आदेश देकर, कार्य को दुरस्त करने का प्रयास कर रहे थे। कार्यालय में कार्यरत कर्मचारी, अपने निकम्मेपन से बाज नहीं आ रहे थे। वो नहीं जानते थे, डॉ. आंबेडकर अछूत हैं तो क्या हुआ, ज्ञान से मुकाबला नहीं किया जा सकता। डॉ. आंबेडकर अपने कार्य के प्रति, गंभीरता से दायित्व को निभाने का प्रयास कर रहे थें तो ब्राह्मण डॉ. आंबेडकर को घेरने के लिए शास्त्रों को खंगाल रहे थे। कार्यालय के कर्मचारी चिन्ता कर रहे थे, "एक सप्ताह से ज्यादा समय हो चुका है। यह अछूत तो काबू ही नहीं आ रहा है। हम जितना प्रयास करते हैं, उतना ही यह आगे मिलता है। हमने यों ही शास्त्रों को पढ़ा। यदि हम अपने आप को नहीं बचा पाए तो धर्म का क्या होगा? एक शूद्र ही तो पढ़कर आया है, इसे देखकर तो औरों का भी हौंसला बढ़ेगा। कौन मानेगा शास्त्रों की बात को।" "गीता के अनुसार, भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रत्येक व्यक्ति को उसके गुण-कर्म के अनुसार से, उसकी जाति में पैदा किया है और उसे वही काम करना चाहिए जो उसकी जाति के लिए निश्चित है।"

मनुस्मृति में तो महाराज मनु ने शूद्र को ज्ञान लेने की पूरी मनाही की है। **गौतम स्मृति में लिखा है, 'यदि शूद्र धर्म चर्चा सुन ले तो, उसके कान में शीशा पिघलाकर डाल दो। कण्ठस्थ कर ले तो, उसकी जीभ काट दो।' लेकिन अब तो कलयुग आ गया है। हमारा प्रभुत्व खतरे में पड़ रहा है।** यह तो शूद्र होकर भी शास्त्रों की मर्यादा का पालन नहीं करता है। हमें इसे शास्त्रों की इन बातों को बताना चाहिए।

डॉ. आंबेडकर ने इन सब बातों को सुना और कहा, **"मैं जानता हूं, क्या लिखा है तुम्हारी गीता में। मैनें मनुस्मृति को भी पढ़ा है। ये सब ब्राह्मणों की सरपरस्ती है। ये सब ब्राह्मणों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए लिखे हैं। यह सब अमानवीय है। यह भी कोई धर्म है, जहां आदमी-आदमी के बीच वैमनस्य की दीवार हो, आदमी द्वारा आदमी को छूने से अपवित्र होने का डर लगता हो। यहां पशुओं की पूजा की जाती है**

लेकिन मनुष्य के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। यह सभ्य मानव समाज पर कलंक है। इंसानियत की छूत को, गौ-मूत्र से धोने वाली तुम्हारी सोच अमानवीय है, इसे मैं धिक्कारता हूं। नहीं मानता मैं तुम्हारे इन धर्म ग्रन्थों को...।"

और इस प्रकार डॉ. आंबेडकर के तीखे और तल्ख शब्दों को सुनकर वो घबराए, "अब क्या जबाब दें? यह तो सब जानता है। शास्त्र भी पढ़े हैं। अनपढ़ लोगों को तो बहकाया जा सकता है लेकिन इसे नहीं डराया जा सकता। यह तो कितना कठोर है। हम कोशिश कर रहे हैं कि आंबेडकर डर कर भाग जाए। जाति के कारण लज्जित होकर छोड़कर चला जाए। अब कोई और उपाय करना होगा।" इस प्रकार उस कार्यालय में लड़े जाने वाले, ब्राह्मण अछूत के युद्ध में, ब्राह्मण पराजित हो गया।

फिर एक षड्यन्त्र रचा। डॉ. आंबेडकर कहां रहते हैं? इसका पता लगाया गया? पारसियों को बताया कि डॉ. आंबेडकर अछूत है। बस फिर क्या था 8-10 पारसी हाथ में लाठी लेकर, पहुंच जाते हैं धर्मशाला में। प्रातः काल का समय था। डॉ. आंबेडकर तैयार थे, अपने कार्यालय जाने के लिए। खट-खट की आवाज के आते ही डॉ. आंबेडकर ने दरवाजा खोला। देखा सामने 8-10 लोग लाठी हाथ में लिए हुए खड़े थे। "कौन हो तुम? हमें पता चला है तुम अछूत हो? यहां रहने की हिम्मत कैसे की?" जो मुंह में आया बक दिया। सारा सामान उठाकर बाहर फैंक दिया। धमकी दी अभी खाली कर दो इसे। डॉ. आंबेडकर ने एक सप्ताह की मौहलत मांगी और कहा, "एक सप्ताह में अपने लिए मकान का प्रबंध कर लूंगा। बस मुझे एक सप्ताह का समय दे दो।" "नहीं, तुम्हे एक घंटे की भी मौहलत नहीं है। रात होने से पहले, इसे छोड़ देना नहीं तो, हम लाठियों से तुम्हारा सिर फोड़ देगें दहशत गर्दों ने कहा।" सारा सामान बिखरा पड़ा था। सामने मौत का भय था। उनके जाते ही भीमराव कार्यालय गये।

कार्यालय में गहरा सन्नाटा छाया था। किसी अनर्थ की आशंका से, सभी भयभीत हो रहे थे। "10 दिन से, जब से डॉ. आंबेडकर इस दफ्तर में आया है तब से, किसी को कोई चैन नहीं।" सभी अपने-अपने बारे में सोच रहे थे कि आज हमारी किस गलती पर डांट पड़ेगी। सभी डॉ. आंबेडकर की

नजरों से बचने का प्रयास कर रहे थे।

सभी आशंकाओं के विरूद्ध डॉ. आंबेडकर, शांत और गंभीर थे। कुर्सी पर बैठे सोच रहे थे, "क्या करूं? महाराज के साथ किया गया, 10 वर्षों की सेवा का अनुबंध, कैसे पूरा करूं? महाराज को भी सब कुछ अवगत करवा चुका हूं। लेकिन कोई गुंजाईश नहीं थी। जरूर मुझे कोई गंभीर फैसला लेना होगा।" काफी सोच समझकर डॉ. आंबेडकर ने अपना त्यागपत्र लिखा और कार्यालय से चल पड़े। कार्यालय में कार्यरत सभी ब्राह्मण बड़े हर्षित हो रहे थे। मानो, उन्होंने इस युद्ध को जीत लिया हो। एक अछूत की छूत से, ब्राह्मणी दुर्ग को बचा लिया हो। डॉ. आंबेडकर ने जैसे ही दफ्तर छोड़ा इधर, ब्राह्मणों ने गौ-मूत्र से पुनः दफ्तर को शुद्ध किया।

धर्मशाला से अपना सामान बटोर कर, डॉ. आंबेडकर बड़ौदा के रेलवे स्टेशन पर पहुंचे। जाकर पता चला कि गाड़ी 4 घंटे देरी से चल रही है। शाम हो चली थी इन्तजार के अलावा कोई चारा नहीं था। पारसी धर्मशाला में घटी घटना, बार-बार आंखों के सामने आ रही थी। "यदि दोबारा इस धर्मशाला में दिखाई दिया तो लाठी से तेरा सिर फोड़ देगें।" डॉ. आंबेडकर स्टेशन के पास बने सयाजीराव गायकवाड़ पार्क में, बोधि (पीपल) वृक्ष के नीचे बैठकर, अपने साथ घटे जुल्म को बार-बार याद कर रहे थे। आंखों से आंसू टपक रहे थे। अपने पिता को याद करते हुए सोचने लगे, "मेरे पिताजी चाहते थे कि मैं पढ़ लिखकर बड़ा आदमी बनूं, लेकिन यहां तो आदमी की विद्वता की नहीं उसकी जाति की इज्जत होती है।" रात का अंधेरा बढ़ता जा रहा था। एक-एक लम्हा बड़ी मुश्किल से बीत रहा था। कभी कार्यालय के व्यंग्य याद आ रहे थे तो कभी बचपन की अपमान भरी घटनाएं। गाड़ी का चार घंटे की देरी क्या हो गई मानो कई वर्षों तक होते रहे अपमानित क्षण बार-बार अपने आपको दुहरा रहे हों। ग्यारह दिन का यह युद्ध प्रत्यक्ष रूप से ब्राह्मणी दुर्ग को भेदने का अनचाहा प्रयास था। निःसन्देह यह युद्ध केवल 11 दिन मात्र का था। सनातनी सोच रहे थे कि गौ-मूत्र के उपयोग से उन्होंने अपने ब्राह्मणत्व को बचा लिया है। इधर बड़ौदा के दफ्तर में ब्राह्मण खुशी मना रहे थे। लेकिन यहां रात्रि के गहन अंधकार में डॉ. आंबेडकर, कुछ और ही कर रहे थे।

डॉ. आंबेडकर बोधि वृक्ष के नीचे, रात्रि के अंधेरे में संकल्प लेते हैं। सर्वप्रथम कहते हैं कि "हे, बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड़! यद्यपि मुझे उच्च शिक्षा के लिए भेजते समय आपने छात्रवृत्रि के बदले 10 वर्ष तक बड़ौदा रियासत की सेवा करने का अनुबंध मुझ से कराया था। मैं अपनी पूरी निष्ठा से इस अनुबंध को पूरा करना चाहता था। लेकिन परिस्थितियां अनुकूल नहीं हैं, और न ही इस घृणित वातारण में अधिक समय तक कार्य किया जा सकता है। **यद्यपि मैं इस अनुबंध को तो पूरा नहीं कर पा रहा हूं लेकिन आज इस सयाजी पार्क के बौधि वृक्ष के नीचे बैठकर यह संकल्प लेता हूं कि "मैं मेरे सात करोड़ भाईयों, जिनके साथ पशुता का व्यवहार होता है, जिन्हें गुलाम बनाकर रखा है, मैं अपना पूरा जीवन उनकी गुलामी से मुक्ति के लिए लगाऊंगा और इस कार्य में किसी प्रकार का कोई समझौता नहीं करूगां"। यह मेरा अपना संकल्प है और मैं इसे किसी भी कीमत पर पूरा करूगां।**

इस प्रकार 11 दिन, डॉ. आंबेडकर ने बड़ौदा में बिताए। 11 दिनों तक ब्राह्मणी दुर्ग हिलता रहा, कांपता रहा, अपवित्र होता रहा और शास्त्रों की मर्यादाएं भंग होती रहीं। गौ-मूत्र के छिड़काव के निरर्थक प्रयोग से, ब्राह्मणी दुर्ग को बचाने की कोशिश की जाती रही। यद्यपि यह क्षणिक जीत दिख रही थी लेकिन नौकरी के 11वें दिन, 23 सिम्तबर 1917 को सयाजी पार्क में बोधि वृक्ष के नीचे लिए गए संकल्प के आगे, ब्राह्मणवाद चूर-चूर होने वाला था। आने वाले तूफान से पूर्व की यह गहरी खामोशी थी। इस **'भीम संकल्प'** के उठे तूफान से, ब्राह्मणवाद ध्वस्त होने वाला था।